अपीलीय अपराधी

माननीय न्यायमूर्ति जिंदर लाल व ए०डी० कौशल के समक्ष

राज्य

-अपीलकर्ता

बनाम

खजान चंद

-प्रतिवादी

1966 की आपराधिक अपील संख्या 372

18 मार्च, 1970

दंड प्रक्रिया संहिता (1898 का 5) - धारा 155(1) और (2) - मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना किसी पुलिस अधिकारी द्वारा गैर-संज्ञेय अपराध की जांच - क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट दाखिल करने वाला पुलिस अधिकारी - ऐसे मजिस्ट्रेट -क्या अपराध का संज्ञान लेने से इंकार कर सकते हैं -मुकदमे के शुरुआती चरणों में की गई अनियमित जांच के संबंध में आपत्ति -अनियमितता को ठीक करने के लिए मजिस्ट्रेट का कर्तव्य -कहा गया -आपत्ति नहीं ली गई और मुकदमे के परिणामस्वरूप सजा हुई -ऐसी सजा -कब रद्द की जा सकती है- आवश्यक वस्तु अधिनियम (1955 का X)-धारा 7 और 11- एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत धारा 7 के तहत अपराध के लिए रिपोर्ट-क्या वैध है।

अभिनिर्धारित किया गया कि निस्संदेह, एक पुलिस अधिकारी मामले में अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना गैर-संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए अधिकृत नहीं है लेकिन यदि वह ऐसा करता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट दायर करता है तो मजिस्ट्रेट मामले का संज्ञान लेने से इनकार नहीं कर सकता है।वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 की किसी भी उपधारा के तहत संज्ञान ले सकता है। जांच में कोई दोष और अवैधता, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो, उसका संज्ञान या परीक्षण के लिए सक्षमता या संबंधित प्रक्रिया पर कोई सीधा असर नहीं पड़ता है। यदि मजिस्ट्रेट धारा 190, उप-धारा (1) (बी) के तहत संज्ञान लेता है और प्रारंभिक चरणों में यह आपत्ति उठाई जाती है कि जांच संहिता की धारा 155 (2) के अनिवार्य प्रावधान का उल्लंघन करते हुए क्षेत्राधिकार के बिना है, तो मजिस्ट्रेट के लिए उल्लंघन की प्रकृति और सीमा पर विचार करना आवश्यक है और ऐसी स्थिति में पूर्ण या आंशिक रूप से पुन: जांच के लिए उचित आदेश पारित करना आवश्यक है जैसा अधिकारी (मैजिस्ट्रेट) संहिता की धारा 155 (2) की आवश्यकताओं के संदर्भ में उचित समझता है।दूसरी ओर, यदि किसी आपत्ति के बिना मुकदमा आगे बढ़ता है तो ऐसा परीक्षण अवैध नहीं है और इसे रद्द करने के लिए यह स्थापित करना ज़रूरी है कि इससे अभियुक्त को पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा।

(पैरा 8 और 12)

यह निर्धारित किया गया कि जहां कानून को एक लोक सेवक द्वारा लिखित रूप में रिपोर्ट की आवश्यकता होती है, वहां कानून की आवश्यकताएं तब पूरी होती हैं जब एक रिपोर्ट एक लोक सेवक जो एक पुलिस अधिकारी भी है, द्वारा दर्ज की जाती है। इसलिए आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 7 के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अपराध की रिपोर्ट वैध है।

(पैरा 11)

श्री कृष्ण चंद्र गुप्ता, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हिसार के 27 दिसंबर, 1965 के प्रतिवादी को बरी करने के आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलकर्ता की ओर से डी. एस. तेवतिया, अधिवक्ता।

प्रतिवादी की ओर से बी.एस. गुप्ता, आर.एस. मित्तल, सी.बी. कौशिक और बचित्तर सिंह, अधिवक्ता।

प्रलय

1. जिन्द्रा लाल, जे.-यह आदेश और निर्णय नौ आपराधिक अपीलों का निपटान करेगा, जो 1966 की आपराधिक अपील संख्या 372, 373, 374, 375, 376, 377, 378, 379 और 380 हैं। वे समान तथ्यों से उत्पन्न होती हैं और कानून के सामान्य प्रश्न शामिल थे व उन्हें एक साथ सुना गया था।
2. संक्षेप में, तथ्य यह है कि जिला खाद्य एवं आपूर्ति नियंत्रक, हिसार ने इन अपीलों में विभिन्न उत्तरदाताओं के खिलाफ, आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के तहत पंजाब खाद्यान्न डीलर्स लाइसेंसिंग ऑर्डर, 1964, और पंजाब ग्राम (वितरण का विनियमन) ऑर्डर, 1964 के प्रावधानों के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए थाना प्रभारी, हिसार शहर को लिखित रूप में रिपोर्ट दी थी।
3. इन रिपोर्टों की प्राप्ति पर, स्टेशन हाउस ऑफिसर ने उत्तरदाताओं के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की और आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 की धारा 7 के तहत मामले दर्ज किए। स्टेशन हाउस ऑफिसर ने तब मामलों की जांच की और विभिन्न उत्तरदाताओं के खिलाफ मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हिसार के समक्ष आरोप पत्र दायर किया।मामलों पर संज्ञान लेते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हिसार ने विभिन्न प्रतिवादियों को प्रक्रियाएँ जारी कीं। उत्तरदाताओं ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को उनके खिलाफ कार्यवाही बंद करने के लिए आवेदन दिया और तर्क दिया कि पुलिस द्वारा की गई जांच अनधिकृत थी व परिणामस्वरूप मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान नहीं ले सकते थे या उसका प्रयास नहीं कर सकते थे।
4. यह आग्रह किया गया था कि जिला खाद्य एवं आपूर्ति नियंत्रक, हिसार द्वारा बनाई गई रिपोर्टों में खुलासा किए गए अपराध और जिनके लिए उत्तरदाताओं पर मुकदमा चलाया जाना था, गैर-संज्ञेय थे और जांच वास्तव में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155(2) में निहित प्रावधान का उल्लंघन करते हुए की गई थी।। यह तर्क दिया गया कि चूंकि जांच आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 155(1) और (2) के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए की गई थी इसलिए पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट वैध और कानूनी रिपोर्ट नहीं हो सकती है और, इसलिए, विद्वान मजिस्ट्रेट के पास मामलों का संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। नतीजतन, यह तर्क दिया गया कि धारा 155(2), आपराधिक प्रक्रिया संहिता का उल्लंघन, संज्ञान के कार्य को प्रभावित करता है और सभी कार्यवाही बिना अधिकार क्षेत्र के हैं तथा उनका कोई परिणाम नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया कि किसी भी मामले में विद्वान मजिस्ट्रेट आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के मद्देनजर अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता क्योंकि एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट एक लोक सेवक की रिपोर्ट नहीं है जैसा कि उस धारा में माना गया है। जो इस प्रकार है:-

   "कोई भी अदालत इस अधिनियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं लेगी, जब तक भारतीय दंड संहिता की धारा 21 में परिभाषित किसी ऐसे व्यक्ति ,जो एक लोक सेवक है, द्वारा किए गए ऐसे अपराध के तथ्यों की लिखित रिपोर्ट न हो।"
5. ये विवाद विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रबल रहे, जिन्होंने आदेश पारित किए जो हमारे समक्ष उपरोक्त अपीलों के विषय-वस्तु हैं।

6. विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने **लाल चंद और अन्य बनाम राज्य (1)**[1], **ओम प्रकाश बनाम राज्य (2)** में इस न्यायालय के दो एकल पीठ के फैसलों पर भरोसा किया। पहले मामले में, एक पुलिस अधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 468 और 471 और भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 82 के तहत अपराधों के लिए गैर-संज्ञेय मामलों की जांच दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 की उपधारा (2) के अनुसार मजिस्ट्रेट की मंजूरी या आदेश के बिना ही शुरू कर दी थी।एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह माना गया कि मुकदमा ख़राब हो गया था और आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 537 के तहत अनियमितता का इलाज संभव नहीं था। **ओम प्रकाश बनाम राज्य (2)** में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था।

7. राज्य के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि इन अधिकारियों ने सही कानून नहीं बनाया और अन्य अधिकारियों के अलावा, **एच.एन. रिशबड और अन्य बनाम दिल्ली राज्य (3)** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(4) के तहत, पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे का पुलिस अधिकारी उस अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) के तहत दंडनीय किसी भी अपराध की जांच ,प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना,करने का हकदार नहीं है। उस मामले में पहली सूचना रिपोर्ट अप्रैल और जून, 1949 में रखी गई थी लेकिन पुलिस उपाधीक्षक से कम रैंक के पुलिस अधिकारी द्वारा संबंधित लोक सेवकों के खिलाफ जांच के लिए मजिस्ट्रेट की अनुमति मार्च/अप्रैल,1951 में दी गई थी। ऐसे अधिकारी द्वारा अगस्त/नवंबर, 1951 में यानी उस तारीख के बाद जिस दिन जांच की अनुमति दी गई थी, आरोप-पत्र दायर किए गए थे। हालाँकि, माना जाता है कि जांच पूरी तरह से या अधिकतर उन तारीखों के बीच पूरी हो गई थी जब पहली सूचना दी गई थी और निचले रैंक के अधिकारी द्वारा जांच करने की अनुमति दी गई थी। यह तथ्य पाया गया कि पूरी जांच पुलिस उपाधीक्षक द्वारा नहीं, बल्कि निचले स्तर के अधिकारियों द्वारा की गई थी और अनुमति मिलने के बाद बहुत कम जांच की गई थी। उस मामले में यह माना गया था कि धारा 5(4) और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 का प्रावधान, जैसा कि 1952 के अधिनियम 59 द्वारा इसके संशोधन से पहले था और संबंधित धारा 5-ए, जैसा कि 1952 के संशोधन अधिनियम 59 द्वारा डाला गया था , अनिवार्य हैं न कि निर्देशिका और इसके उल्लंघन में की गई जांच अवैधता की मुहर लगाती है। आगे यह माना गया कि यह कायम नहीं रखा जा सकता कि एक वैध और कानूनी पुलिस रिपोर्ट संज्ञान लेने के न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आधार है। इसके अलावा, इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक अर्थ में, धारा 190(1) के खंड (ए), (बी) और (सी) संज्ञान लेने के लिए आवश्यक शर्तें हैं और यह कहना संभव नहीं है कि एक अमान्य पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लिया जाना निषिद्ध है और इसलिए, अशक्त है। ऐसी अमान्य रिपोर्ट अभी भी धारा 190(1) के खंड (ए) या (बी) के अंतर्गत आ सकती है और किसी भी मामले में इस प्रकार लिया गया संज्ञान केवल मुकदमे की पूर्ववर्ती कार्यवाही में त्रुटि की प्रकृति का है। उनके आधिपत्य ने आगे कहा कि यदि जांच से संबंधित अनिवार्य प्रावधान के उल्लंघन से प्रभावित पुलिस रिपोर्ट पर वास्तव में संज्ञान लिया जाता है तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि इसके बाद होने वाले मुकदमे के परिणाम को तब तक रद्द नहीं किया जा सकता जब तक कि जांच में अवैधता से घोर अन्याय होता हुआ दिखाया जा सकता है। **प्रभु बनाम एम्परर (4), और लुम्भारदार जुत्शी बनाम द किंग (5)** पर भरोसा करते हुए यह माना गया कि जांच के दौरान की गई अवैधता सुनवाई के लिए न्यायालय की क्षमता और अधिकार क्षेत्र को प्रभावित नहीं करती है।

8. उस मामले में, मुकदमा आगे बढ़ गया था और दोषसिद्धि हुई थी और अदालत ने माना था कि जहां मामले का संज्ञान वास्तव में लिया गया है और मामला समाप्त करने के लिए आगे बढ़ा है, पूर्ववर्ती जांच की अमान्यता से परिणाम को निष्फल नहीं किया जाता जब तक कि घोर अन्याय न हुआ हो। इसके अलावा, जब धारा 5-ए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन मुकदमे के प्रारंभिक चरण में न्यायालय के ध्यान

---

[1](1) 1964 P.L.R. 68.
(2) 1964 P.L.R. 580.
(3) A.I.R. 1955 SC. 196.
(4) A.I.R. 1944, P.C. 73
(5) A.I.R. 1950 P.C. 26.

में लाया जाता है, तो न्यायालय को उल्लंघन की प्रकृति और सीमा पर विचार करना होगा और ऐसे अधिकारी द्वारा, पूर्ण या आंशिक रूप से पुण: जांच के लिए आदेश पारित करना होगा जिसे वह(न्यायालय) अधिनियम की धारा 5-ए की आवश्यकताओं के संदर्भ में उचित समझे। इसलिए, यह देखा जाता है कि कानून में पूर्ण रूप से यह तय हो चुका है कि जांच में दोष और अवैधता से, चाहे कितनी भी गंभीर हो, संज्ञान या परीक्षण से संबंधित क्षमता या प्रक्रिया पर कोई सीधा असर नहीं पड़ता है। कुछ अन्य न्यायालयों ने भी यह दृष्टिकोण अपनाया है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर उन अथॉरिटीज़ का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।

9. इन अपीलों में दूसरा प्रश्न जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या मामले की परिस्थितियों में एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को एक लोक सेवक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के रूप में माना जा सकता है। यह तर्क आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 11 के मद्देनजर दिया गया था जिसे इस फैसले में पहले ही निर्धारित किया गया है।
10. विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि क्योंकि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के तहत निजी शिकायत वर्जित थी, उस धारा में प्रयुक्त 'रिपोर्ट' शब्द का अर्थ मामले से निपटने के लिए अधिकृत किसी लोक सेवक की रिपोर्ट है, अर्थात रिपोर्ट या तो निदेशक, खाद्य और आपूर्ति या जिला मजिस्ट्रेट या सरकार के निदेशक द्वारा नियुक्त किया गए निरीक्षक द्वारा मजिस्ट्रेट को दी जानी चाहिए थी क्योंकि सिर्फ़ उनके पास पंजाब ग्राम (वितरण का विनियमन) आदेश, 1964 के तहत दस्तावेजों में प्रवेश करने, खोज करने और जब्त करने की शक्ति थी।इसलिए वह इस निष्कर्ष पर आए कि पुलिस अधिकारी ऐसा लोक सेवक नहीं था और कानून की आवश्यकता यह है कि रिपोर्ट ऐसे लोक सेवक द्वारा की जानी चाहिए जो पुलिस अधिकारी नहीं था।
11. यह मामला **प्रवीण चंद्र मोदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (6)** [2]मामले में सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा तय किया गया है। यह एक ऐसा मामला था जहां एक पुलिस अधिकारी भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत एक मामले की जांच करते समय आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के तहत एक मामले की भी जांच की। वहां एक सवाल यह भी उठा कि क्या आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के तहत किसी अपराध के लिए एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को एक लोक सेवक की रिपोर्ट के रूप में माना जा सकता है। यह माननीय न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला द्वारा आयोजित किया गया था जब वह अदालत के लिए बोल रहे थे कि उन सभी मामलों में जहां कानून को एक लोक सेवक द्वारा लिखित रूप में रिपोर्ट की आवश्यकता होती है, कानून की आवश्यकताएं तब संतुष्ट होती हैं जब एक रिपोर्ट एक लोक सेवक द्वारा दायर की जाती है जो एक पुलिस अधिकारी भी है। नतीजतन, सुप्रीम कोर्ट के इस अधिकार के मद्देनजर यह तर्क देना व्यर्थ है कि रिपोर्ट किसी लोक सेवक द्वारा नहीं थी, जैसा कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के अनुसार आवश्यक है।
12. अत: कानून स्पष्ट प्रतीत होता है। निस्संदेह, एक पुलिस अधिकारी किसी गैर-संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना अधिकृत नहीं है, लेकिन यदि वह ऐसा करता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट दाखिल करता है, तो मजिस्ट्रेट मामले का संज्ञान लेने से इनकार नहीं कर सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 की किस उपधारा के अंतर्गत वह संज्ञान लेता है, यह एक अलग मामला है, जिससे हमें इन कार्यवाहियों में कोई सरोकार नहीं है। यदि मजिस्ट्रेट धारा 190, उपधारा 1(बी) के तहत संज्ञान लेता है और प्रारंभिक चरणों में आपत्ति उठाई जाती है कि जांच, अधिकार क्षेत्र के बिना या अवैध थी, तो यह मजिस्ट्रेट का काम है कि वह अनियमितता को ठीक करे जैसा कि एच.एन. रिशबड और अन्य बनाम दिल्ली राज्य (3) में परिकल्पित है।। दूसरी ओर, यदि मुकदमा बिना किसी आपत्ति के आगे बढ़ता है, तो ऐसा मुकदमा अवैध नहीं है और इसे रद्द करने के लिए अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह स्थापित किया जाना चाहिए।
13. दोनों पक्षों की ओर से बार में बड़ी संख्या में अन्य अथॉरिटीज़ का हवाला दिया गया, लेकिन ऊपर उल्लिखित दो मामलों के मद्देनजर उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

---

[2] (6) A.I.R 1965 S.C 1185

14. ऊपर जो देखा गया है, उसके मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि इनमें से प्रत्येक मामले में अभियुक्तों का बरी होना कानून के विपरीत है। हालाँकि, हम देखते हैं कि विभिन्न उत्तरदाताओं के खिलाफ मामले 1964 में ही दर्ज किए गए थे और उन्हें बरी करने के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश 1965 में घोषित किए गए थे। अपराध छोटी प्रकृति के हैं, आरोप यह है कि उत्तरदाताओं ने खाद्यान्न लाइसेंस की शर्त संख्या 3 के तहत निर्धारित उनके द्वारा रखे गए खाद्यान्न स्टॉक रजिस्टर क़ायम नहीं रखे था और उन्होंने खातों को सही ढंग से बना नहीं रखा था। इन परिस्थितियों को देखते हुए, हम नहीं मानते कि वर्तमान मामलों में पुनः सुनवाई का आदेश देने की आवश्यकता है। इन अपीलों का तदनुसार निपटारा किया जाएगा।

ए. डी. कोशल, जे.-मैं सहमत हूं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

बेनिका

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

हरियाणा